IIPIMRJ IIP International Multidisciplinary Research Journal

An Online Double blind peer reviewed / Refereed Journal
Vol: 02 No. Issue III, (July-September) (2025)
Impact Factor: GSRD-IF: 5.001
ISSN: 3049-2734 (Online)

मराठी रंगमंच में नायिका के विविध रूप

Dr. Khandekar Dadasaheb S.
Associate Professor, Department of Hindi,
Sangameshwar College (Autonomous), Solapur.
Email : dadakhandekar@gmail.com

Article Info

Article History:
Received: 04th July 2025
Accepted: 07th July 2025
Published: 12th July 2025

Keywords:

नारी, मराठी, नाटक, समाज, जीवन, शोषण, पितृसत्ता, रंगमंच, संघर्ष,

ABSTRACT

इस शोधपत्र में उन्नीसवीं सदी से लेकर समकालीन काल तक मराठी नाटकों में स्त्री के बदलते रूपों का अध्ययन किया गया है। मराठी रंगमंच ने सामाजिक सुधार आंदोलनों से प्रेरित होकर बाल विवाह, विधवापन, घरेलू शोषण, लैंगिक असमानता जैसी पितृसत्तात्मक परंपराओं पर प्रश्न उठाए और साथ ही स्त्री को शिक्षा, स्वतंत्रता तथा प्रतिरोध की वाहक के रूप में भी चित्रित किया। शारदा जैसे प्रारंभिक नाटकों ने बाल विवाह की प्रथा को चुनौती दी, वहीं शांतता! कोर्ट चालू आहे और कमला जैसे नाटकों ने स्त्रियों के प्रति अन्याय और कानूनी असमानताओं को उजागर किया। नाटकों में स्त्री के विविध रूप कर्तव्यनिष्ठ पुत्री, पत्नी, माँ, विधवा, कर्मशील महिला और आत्मनिर्भर व्यक्तित्व को प्रस्तुत किया गया है, जो परंपरा और आधुनिकता, निर्भरता और स्वतंत्रता, नैतिकता और सामाजिक सुधार के बीच के संघर्ष को सामने लाते हैं। विभिन्न कालखंडों के आधार पर स्त्री रूपों का विश्लेषण यह स्पष्ट करता है कि मराठी नाटक केवल समाज का दर्पण ही नहीं बने, बल्कि उन्होंने सामाजिक चेतना, विधायी सुधारों और स्त्री गरिमा के सशक्तिकरण की दिशा में महत्वपूर्ण योगदान दिया।

Plagiarism Check Report:
Tool Used: Turnitin
Date of Report: July 07th, 2025
Similarity Index: 1%
Remarks: No significant matching text. All citations and matches are properly referenced. The manuscript is considered original.

Copyright © 2025 The Author(s). This is an open access article distributed under the Creative Commons Attribution License, (http://creativecommons.org/licenses/by/4.0/) which permits unrestricted use, distribution, and reproduction in any medium, provided the original work is properly cited.

How to Cite: Dr. Khandekar D. S. (2025). मराठी रंगमंच में नायिका के विविध रूप. IIP: International Multidisciplinary Research Journal, 2(3), 34–40.

प्रस्तावना:

उन्नीसवीं सदी न केवल महाराष्ट्र बल्कि पूरे भारत के इतिहास में चिंतन का काल रही है। इस काल में समाज में बड़े-बड़े वैचारिक तूफ़ान चल रहे थे। अंग्रेजों के संपर्क, उनके साहित्य का परिष्कार, विचारों की उदारता तथा महिलाओं के प्रति समानता का उदार दृष्टिकोण; सभी ने भारतीय जीवन पर प्रभाव डाला। जीवन का यह रूप जो हमारे लिए अपरिचित है और हमारी पारंपरिक मान्यताओं और निष्ठाओं को झकझोरता है, उसे देखकर विचारकों ने अपने जीवन और समाज को नए ढंग से देखना शुरू किया और इस अवसर पर आत्म-निरीक्षण के बाद नए विचारों की बयार बहने लगी। इस मंथन से कई प्रश्न उठे; जवाब ढूंढने की कोशिश में अगली सदी भी बीत गई।

नारी जीवन के विभिन्न पहलुओं पर विशेष रूप से विचार किया गया। भारतीय नारी का जीवन अंधकारमय यात्रा थी। उनके जीवन के सभी रिश्ते परेशानियों से जुड़े थे। घर और रसोई उसके कार्य क्षेत्र नहीं, बल्कि उसके श्रम क्षेत्र थे। अपार दुख ! जो दिया उसे पहनो, जो मिले उसे खाओ, जो कहा उसे सुनो और कड़ी मेहनत करो ! बेडरूम में भी नौकरानी है ! वहां भी वह अपने पति के आनंद के लिए उतनी ही उपस्थित रहती थी जितना वह चाहता था। बड़ा महल हो या दो कमरे में बसी दुनिया, ये थी महिलाओं की जिंदगी ! समाज के इस गहरे घाव पर बुद्धिजीवियों का ध्यान गया और उनकी कलम ने मानो सत्ता के विरुद्ध, व्यवस्था के विरुद्ध युद्ध का आह्वान किया !

सबसे पहले महात्मा जोतिराव फुले ने महिलाओं के जीवन के बेहद नाजुक और गंभीर मुद्दे पर सबका ध्यान आकृष्ट किया। नाजायज़ बच्चों की समस्या की गंभीरता आज भी समाज के सामने एक बड़ी समस्या है। इसकी पीड़ा फुले को उसी दौरान महसूस हुई। मातृत्व कभी पापी नहीं होता। चाहे वह विधावा हो या गृहिणी। उन्होंने इस क्रांतिकारी विचार को लोगों के सामने रखा। उन्होंने भारत का पहला बाल हत्या निरोधक संगठन अपने ही मकान में स्थापित किया। "यदि कोई विधवा गलती से गर्भवती हो जाती है, तो उसे अपने घर में गुप्त रूप से बच्चे को जन्म देना चाहिए", जोतिराव ने विज्ञापित किया था। इक्कीसवीं सदी की दहलीज पर भी जिन विचारों और कार्यों को पचा पाना मुश्किल है, उन विचारों और कार्यों को फुले ने उन्नीसवीं सदी में हकीकत में बदल दिया। फूले जैसे लोगों के मजबूत हाथ आज की आधुनिक नारी के व्यक्तित्व को आकार देने के लिए आगे बढ़े। उन्होंने लड़कियों की शिक्षा के लिए 1848 में एक स्कूल शुरू किया।

आगरकर ने जिस स्त्री रूप को अभिव्यक्त किया वह आज वास्तविकता बन गया है। महिला शिक्षा के प्रति उनका जुनून आज कम से कम आंशिक रूप से फलीभूत हुआ है। अगरकरों ने सहमति की उम्र को लेकर कानून में बहस छेड दी। आठ-दस साल की बच्चियों को शारीरिक और मानसिक शोषण से बचाया। यह साबित हो चुका है कि महिलाओं की बुद्धिमत्ता और काम करने की क्षमता के बारे में अगरकर की धारणा निराधार नहीं थी। आज जब कोई ऐसी महिला को देखता है जिसने शिक्षा से लेकर कई अन्य क्षेत्रों में आत्मविश्वास के साथ सफलता हासिल की है तो अगरकर को याद किए बिना नहीं रह पाता।

पुरुष ही वह मुख्य कारक था जिसने नारी को दुख की गर्त में धकेला, उसे अज्ञानता के अंधकार में रखा और पुरुष ही था जिसने उसे दासता से मुक्त कराकर शिक्षा के प्रकाश की ओर हाथ बढ़ाया। इस बात को भुलाया या नकारा नहीं जा सकता कि उन्नीसवीं सदी में महिला दासता के खिलाफ उठी शुरुआती आवाजें पुरुषों की थीं। महाराष्ट्र में नारी शिक्षा के ऐसे समर्थक भी थे जिन्होंने समाज के विरुद्ध जाकर और परिवार के सदस्यों के क्रोध का शिकार होने के बावजूद, अपनी पत्नियों से नारी शिक्षा की शुरुआत की। सावित्रीबाई फुले, रमाबाई रानाडे, यशोदाबाई अगरकर, आनंदीबाई जोशी, काशीताई कानिटकर कुछ प्रमुख उदाहरण हैं। इन महिलाओं ने पति के डर से, उसकी पिटाई के डर से सीखा, लेकिन भुगतना महिलाओं को ही पड़ा।

ताकि पत्नी सीख सके इसलिए पति शिक्षक बन गया। रमाबाई रानडे की शिक्षा इसलिए शुरू हुई क्योंकि उनके पति को यह पसंद था। वह कहती हैं कि हमें कभी भी वह काम करने से नहीं चूकना चाहिए जो हमारा पति हमसे करवाना चाहता है। जस्टिस रानडे की धौंस ने रमाबाई की शिक्षा शुरू की थी; लेकिन बाद में उनकी रुचि शिक्षा और पढ़ने में हो गई।

आनंदीबाई जोशी को गोपालराव ने उन्नीस साल की उम्र में चिकित्सा का अध्ययन करने के लिए अमेरिका भेजा था। गोपालराव का विवाह आनंदीबाई से इस शर्त पर हुआ था कि मैं लड़की को उतनी ही शिक्षा दूँगा जितनी मैं चाहूँगा। आनंदीबाई ने मार सहकर सीखा। हालांकि वह अमेरिका चली गईं लेकिन भारत में रहकर भी गोपालराव ने उन्हें बहुत प्रताड़ित किया। आनंदीबाई दुखी और परेशान रहने लगी थी। फिर भी उन्होंने अपने पति को लिखा, "यह तय करना बहुत मुश्किल है कि आपने मेरे साथ जो व्यवहार किया वह अच्छा था या बुरा। अगर आप मुझसे पूछेंगे तो मैं जवाब दूंगी कि वह अच्छा था और ऐसा नहीं।" साथ ही एक लेटर में वह लिखती हैं- "इस तरह दर्द मत दो." अपनी शिक्षा में गोपाल-राव की महत्वपूर्ण भूमिका को स्वीकार करने के बावजूद, आनंदीबाई को लगा कि शारीरिक, मानसिक कष्ट सहना पड़ा, इसके जिम्मेदार गोपालराव है।

जिस प्रकार पुरुषों ने महिलाओं को शिक्षित किया, उसी प्रकार लिखने के लिए भी प्रेरित किया। 'सुधारक' ने 'सुशिक्षित कुलस्त्रियांचे लेख' चलाया और महिलाओं को अपने विचार व्यक्त करने का मार्ग प्रशस्त किया। सुबोध पत्रिका, ज्ञानोदय, मनोरंजन पत्रिका ने भी महिलाओं को लिखने पर मजबूर किया। ताराबाई शिंदे जैसी लेखिकाएं इसीलिए समाज के सामने आयी। ताराबाई की पुस्तक 'स्त्रीपुरुषतुलना', निबंध के अलावा, महिलाओं के जीवन पर एक आलोचनात्मक दृष्टिकोण देती है, जो बिल्कुल अभूतपूर्व है। ताराबाई को लिखने के लिए प्रेरित करने वाली घटना उस समय की एक गंभीर समस्या पर भी प्रकाश डालती है। सूरत की विजयालक्ष्मी नामक चौबीस वर्षीय विधवा को शिशुहत्या के आरोप में मौत की सजा सुनाई गई थी। इस पर अखबारों में इधर-उधर चर्चा होती रही। ये घटना साल 1881 की है। विजयलक्ष्मी ने एक बच्चे को जन्म दिया, उसे रसोई के बर्तन से मार डाला और फिर उसे नौकरानी के साथ कूड़ेदान में फेंक दिया-यह उसका अपराध ! अदालत में उसके खिलाफ मामला चला, उसने अपराध कबूल कर लिया - उसे मौत की सजा सुनाई गई ! इस सारे हंगामे में वह व्यक्ति कहीं नज़र नहीं आता जिसका यह काम है। इसका उल्लेख नहीं है। कोई पूछताछ ही नहीं। किसी ने भी उस व्यक्ति की हलकासा भी उल्लेख नहीं किया जिसने विजयलक्ष्मी को इस बदतर स्थिति तक पहुंचाया।

महिलाओं के प्रति समाज के नजरिए में जो बदलाव आता है, इस प्रक्रिया में पुरुष वर्ग का योगदान बहुत बड़ा होता है। हमारे सामने ऐसी स्थिति नहीं थी जहां हर महिला को अपने अधिकारों के लिए लड़ना पड़े। 1975 के बाद महिला मुक्ति आंदोलन में जिन विचारों पर मंथन हुआ उनमें से अधिकांश विचार इन बुद्धिजीवी पुरुषों और महिलाओं द्वारा पहले ही हमारे सामने प्रस्तुत किये जा चुके हैं। स्त्रियों की आभूषणों की चाहत, आपसी द्वेष, पुरुषों पर निरंतर निर्भरता, मन्नतों में समय बर्बाद करना, अंधविश्वासों का शिकार होना आदि को नारी मुक्ति आंदोलन ने बार-बार प्रस्तुत किया है। यह स्वतंत्र शोध का विषय हो सकता है।

बीज शब्द: नारी, मराठी, नाटक, समाज, जीवन, शोषण, पितृसत्ता, रंगमंच, संघर्ष,

मराठी नाटक में स्त्री रूप:

यह विचारक केवल पत्रिकाओं में लिखकर ही नहीं रुके, बल्कि इन नये विचारों की मशाल उठाई और साहित्य के अन्य क्षेत्रों में भी लिखा। साहित्य से समाज सुधार एवं नारी जागरूकता के सशक्त स्वर उभरे। नाटककारों ने महसूस किया कि नाटक इन विचारों को समाज तक पहुँचाने का एक बहुत ही प्रभावी माध्यम है और सामाजिक जीवन में उत्साह का प्रभावी चित्रण मराठी नाटकों से हुआ। मराठी नाटकों ने हर परिवर्तन, उस पर होने वाली विपरीत प्रतिक्रियाओं, परिवर्तन की आवश्यकता पर ध्यान दिया है। नाटककारों की सामाजिक चेतना तथा नाटक के साहित्यिक स्वरूप की सामाजिक अभिमुखता एवं व्यापकता को ध्यान में रखते हुए यदि नाटकों के आधार पर नारी के बदलते रूपों का अध्ययन किया जाए तो वह अधिक प्रासंगिक एवं प्रामाणिक होगा, अतः नाटकों में दिखने वाले नारी के स्वरूपों का ग्राफ यहाँ खींचा गया है। बाल विवाह से लेकर विवाह संस्था को अस्वीकार करने तक, एक महिला के जीवन की यात्रा के कई रूप नाटककारों ने नोट किए है। क्या एक महिला दो पुरुषों से शादी कर सकती है ? और ये तीनों मिलकर एक परिवार क्यों नहीं बना पाते, मराठी नाटक ने यह प्रश्न समाज के सामने विचारार्थ रखा है। नारी जीवन की इस बड़ी दूरी को कवर करने वाले नाटकों के अधिकांश लेखक पुरुष हैं। लेकिन नारी जीवन की प्रगति का, नारी जीवन के बदलावों और मानसिकता को पकड़ने की शक्ति का जो ग्राफ खींचा गया है, वह सोचने पर मजबूर करने वाला है।

कोई भी सामाजिक सुधार सत्ता के साथ संघर्ष से ही संभव होता है। परम्पराएँ समाज की हड्डियाँ हैं। वे लोगों के खून में इस कदर घुले-मिले हैं कि उनके लिए नंगी आंखों से दोष देखना असंभव हो जाता है। इसीलिए सामाजिक वर्गों को संघर्ष करना पड़ता है। महिलाओं की आज़ादी के साथ भी यही हुआ। महिलाएं रीति-रिवाजों और परंपराओं के विरुद्ध लड़कर गुलामी से मुक्त होना चाहती थीं। यह हर उस तत्व के खिलाफ लड़ाई थी जो एक महिला को गुलाम बनाता है, उसे बंधन में रखने की कोशिश करता है। इसके लिए सही पृष्ठभूमि तैयार करने का काम मराठी नाटकों ने किया है। मराठी नाटककार दृश्य माध्यम से समस्या की गंभीरता को प्रभावी ढंग से समाज तक पहुँचाने में सफल हुए हैं। आचार्य अत्रे ने नाट्यभूमि के मई 1969 अंक में अपने संपादकीय में यह बात स्पष्ट रूप से कही है। वे कहते हैं, "जन-रंजन, जन-शिक्षा और जन-जागरूकता लोक कल्याण के तीन महत्वपूर्ण सूत्र हैं जिन्हें मराठी रंगमंच जितना किसी अन्य माध्यम या सरकारी कानून द्वारा लागू नहीं किया गया है।"[1] मराठी नाटक ने एक ऐसा माहौल बनाने में बहुत मूल्यवान भूमिका निभाई है जहां कानून को समाज में महिलाओं के खिलाफ अवांछनीय और अनुचित कदमों को रोकना चाहिए। साथ ही नाटकों ने समाज के मन में यह बात बैठाने का भी काम किया है कि कानून कितना जरूरी है और कानून का पालन न करने पर कैसे अनर्थ होता है। यह सामाजिक मानस को विकसित करने का कार्य है।

गोविंदराव कानिटकर ने इस बारे में कहा है, "आज की मुख्य समस्या यह है कि क्या आप विधवाओं को पुनर्विवाह के लिए मजबूर कर सकते हैं ? ये बातें लोकप्रिय राय और गहरी जड़ें जमा चुकी परंपराओं से तय होती हैं। ऐसे समय में कानून का कोई मतलब नहीं रह जाता है।"[2] जड़ परंपराओं को समझाने और आम लोगों की राय को कानून के अनुरूप बनाने का काम मराठी नाटककारों ने किया है। इसी कारण से गडकरी ने 'प्रेमसंन्यास' में विधवाओं का उपहास और धोखे को दिखाया। 1856 में पारित विधवा पुनर्विवाह कानून को जनता द्वारा स्वीकार करने में काफी समय लगा। 20वीं सदी के दूसरे दशक में भी विधवा पुनर्विवाह को दयनीय और निन्दनीय बनाकर समाज के सामने पेश किया गया। विधवाओं की स्थिति, महत्त्व समझाने का कार्य नाटककारों को करना पड़ा।

'शारदा' नाटक और बाल विवाह रोकथाम अधिनियम के बीच ऐसा संबंध है कि इस अधिनियम को सारडा अधिनियम के बजाय शारदा अधिनियम कहा जाता है। 'शारदा' जैसे अनेक नाटकों ने बाल-विवाह प्रथा की बुराइयों का बार-बार वर्णन करके जनमानस का ध्यान भटकाया है; लेकिन इससे कानून बनाने का एक तरह का दबाव भी आया।

बलात्कार एक महिला के जीवन की बहुत ही जटिल और गहरा घाव करनेवाली समस्या है। या तो प्रतिष्ठा के डर से इन अपराधों को दबा दिया जाता है। अगर कोई महिला प्रतिकार करती थी तो कानून उसे अधमरा कर फेंक देता था। अदालत में बलात्कार को साबित करने के दौरान महिला को अत्यधिक कठिनयियों का सामना करना पड़ता था जैसे कि वह फिर से बलात्कार का सामना कर रही हो इससे बलात्कार को साबित करने में कई मुश्किलए आती थी। मराठी नाटकों में इस विषय पर बहुत कम विचार किया गया है। लेकिन ऐसा करने का साहस करने वाले 'पुरुष' नाटक को सम्मानित किया गया। 1982 के इस नाटक में अंबिका अफसोस जताती हैं, "और कानून भी देखिए- अगर कोई डाकू डकैती करता है, तो उसे अदालत में यह साबित करना होगा कि उसने डकैती नहीं की है और यह बलात्कार के ठीक विपरीत है ! गुलाबराव को यह साबित नहीं करना था कि उसने बलात्कार नहीं किया। मुझे यह साबित करना था कि बलात्कार हुआ था। क्योंकि यह एक आदमी का कानून है !"[3] नाटक में यह आवाज उठाई गई कि मौजूदा कानून के आधार पर यह मसला हल नहीं होगा। और 1983 में इस अधिनियम में संशोधन किया गया। इसके अनुसार, यह प्रावधान है कि बलात्कार के मामलों को गुप्त रूप से चलाया जाना चाहिए, ताकि महिला की पहचान उजागर न हो। साथ ही कोर्ट में कहा कि महिला ने खुद के साथ रेप किया है कहा कि उसकी गवाही जज को स्वीकार करनी चाहिए। इस अधिनियम के तहत कहा गया है कि अब कोई अन्य आधार टिक नहीं पाएगा। इसका मतलब यह है कि महिला को यह साबित नहीं करना होगा कि उसके साथ बलात्कार हुआ है और अपराधी फर्जी सबूतों के साथ बच नहीं सकता है। इसे एक प्रकार की क्रांति ही कहना होगा जिससे नारी अस्मिता की गरिमा बनी रहे इसके लिए जनमत तैयार करने में मराठी नाटक का प्रदर्शन महत्वपूर्ण है।

मराठी नाटककारों की यही दृष्टि मराठी रंगमंच की ताकत है। 'आई रिटायर होतेय' को दर्शकों से जो प्रतिक्रिया मिली है, उसके आधार पर इस बात से इंकार नहीं किया जा सकता है कि कल माताओं को सेवानिवृत्त होने की अनुमति देने के लिए एक कानून पारित किया जा सकता है। इसके अलावा, 'चारचौघी' में एक महिला, दो पुरुषों की पारिवारिक संरचना की संभावना एक सदी के बाद भी मौजूद है, इससे इनकार नहीं किया जा सकता है। कौन कह सकता है कि ऐसे परिवार को कानून का सहारा मिल सकता है ? केवल समय ही बता सकता है कि समय के गर्भ में क्या है ! यह हमारे लिए स्पष्ट है कि जिस जीवन चित्रण को कभी अप्रासंगिक, सनसनीखेज और रहस्यमय माना जाता था वह आज वास्तविकता बन रहा है। साथ ही, जो जीवनशैली आज समय से पहले लगती है वह कल की जीवनशैली क्यों नहीं बन सकती है ?

नाटककार की वास्तविकता को भेदने और भविष्य को पकड़ने की शक्ति उन नाटकों और उस भाषा के रंगमंच से निर्धारित होती है। और यह

गर्व की बात है कि मराठी नाटककारों ने ये दोनों चीजें हासिल की हैं। उन्होंने वास्तविकता का अपना एहसास कभी नहीं खोया, ताकि वे भविष्य देख सकें। सुधारों और नाट्य प्रवृत्तियों पर वैचारिक लेखन मराठी भाषा में समानांतर धाराएँ हैं। यहां तक कि जो लोग वैचारिक लेखन में सफलता के शिखर पर हैं, वे भी नाटक के दृश्य माध्यम से अपने विचार व्यक्त करना चाहते थे। ऐसा करने से विचारों का परिवर्तन सुगम हुआ और मराठी नाटकों को प्रतिष्ठा मिली। नाटकों ने उन लेखकों को भी आकर्षित किया है जिन्होंने साहित्य के अन्य रूपों के माध्यम से अपने विचारों को प्रभावी ढंग से व्यक्त किया है। प्र.के.अत्रे, रा.ग.गड़करी, वि.वा.शिरवाडकर, चिं.त्र्यं.खानोलकर जिन्होंने मराठी नाटक को प्रेरित किया। भा.वि.वरेरकर, पु.भा.भावे, जयवंत दलवी, वसंत कानेटकर, रत्नाकर मतकरी, विजय तेंदुलकर, अनिल बर्वे, विश्राम बेडेकर ने भी नाटक के साथ-साथ कहानियों और उपन्यासों के क्षेत्र में सफल कदम रखा है। यात्रा वृतांत, व्यक्तिचित्र पु.ल. देशपांडे का एक विशेष प्रांत था।

मराठी रंगमंच को उन नाटककारों से लाभ हुआ जिन्होंने एक ही समय में कई क्षेत्रों में लिखा। अनुभव की जीवंत प्रस्तुति और सैकड़ों दर्शकों की त्वरित प्रतिक्रिया नाटक के मजबूत बिंदु थे। मराठी नाटककारों द्वारा विभिन्न सामाजिक समस्याओं के माध्यम से नारी जीवन का चित्रण नारी के अनेक रूपों को प्रस्तुत करता है। मराठी नाटकों में बाल विवाह की समस्या को सशक्त ढंग से प्रस्तुत करने वाला नाटक 'शारदा' प्रारंभिक बिंदु है और नाटक 'चारचौघी' जो सामाजिक बंधनों को चुनौती देकर स्वतंत्र जीवन जीने की कोशिश करती महिलाओं का चित्रण करता है। लगभग एक सदी लंबे इन नाटकों में देखे गए विभिन्न महिला रूपों का अध्ययन यहाँ प्रस्तुत किया गया है। अध्ययन की सुविधा के लिए नाटकों की विभिन्न प्रकृति को ध्यान में रखते हुए इन नाटकों को पाँच कालखंडों में बाँटकर उनका विश्लेषण किया गया है। कुछ चयनित नाटकों के आधार पर उस काल में नारी जीवन, नारी समस्याओं तथा तत्कालीन परिस्थितियों के अनुसार नारी द्वारा धारण किये जाने वाले विभिन्न रूपों की चर्चा की गई है।

इनमें से कुछ नाटकों के आधार पर 'शारदा' से 'एकच प्याला' तक के कालखंड की कल्पना करके इस काल के नारी रूपों को तलाशने का प्रयास किया गया है। पितृसत्तात्मक संस्कृति में भुजंगनाथ जैसा बूढ़ा व्यक्ति एक युवा लड़की से शादी कर सकता है; क्योंकि यह किसी का काम नहीं था कि कोई लड़की इस मामले में अपनी राय रखे और उस पर विचार किया जाए। इसे देवल ने नाटक 'शारदा' में सटीक ढंग से दर्शाया है। कंचनभट स्पष्ट रूप से इंदिराकाकु या शारदा की राय और मन को नहीं जानते हैं, लेकिन वे दृढ़ता से अपनी राय दर्ज करते हैं। जो हो रहा है उसका विरोध करते हैं। 'शारदा' के दौरान नारीवाद का बिगुल बजाया गया। पुरुष प्रधानता लेकिन महिलाएं व्यर्थ में पीड़ित नहीं थीं। यह मराठी नाटक में महिला रूपों के आगे विकास की शुरुआत थी। बाल विवाह, स्त्री शिक्षा, रीति-रिवाजों की निरर्थकता, व्यक्तिवाद, विजातीय विवाह आदि विषयों पर विचार-मंथन इस युग का धर्म था। लोकहितवादी, आगरकर, फुले विचार दे रहे थे; लेकिन महिला को ये बात सोच समझकर स्वीकार करनी पड़ी। हमें अपनी लड़ाई खुद लड़नी थी। नाटकों में महिलाओं के बीच इस दिशा में चल रहे मंथन को प्रस्तुत किया गया। तिलक और आगरकर समाज के दो महापुरुष हैं। इन दोनों के विचारों का समाज पर मिश्रित प्रभाव पड़ा। इस काल के नाटकों में नारी रूपों को देखते हुए आगरकर समाज की बुद्धि के अनुरूप थे; लेकिन लगता है मन तो तिलक की ओर ही दौड़ रहा था। समाज नवनिर्माण की चाह महसूस कर रहा था। लेकिन पारंपरिक मान्यताएं नहीं टूटीं। ऐसी स्थिति में मन की इस स्थिति को इस काल के नाटकों ने प्रभावशाली ढंग से दर्शाया है।

अगले भाग में प्र.के.अत्रे के 'घराबाहेर' से लेकर अपने नाटक 'तो मी नव्हेच' तक का भाग लिया है। 'घरबाहेर' का काल सामाजिक परिवर्तन का काल था। इसमें सुधार की जरूरत थी. लेकिन अगर आप एक कदम उठाना चाहते हैं, तो यही वह समय है जब आगे का रास्ता धुंधला था। महिलाओं ने अमानवीय परंपराओं का बंधन उतार फेंका। उन्हें अपने स्वतंत्र अस्तित्व का एहसास होने लगा था। महिलाएं नई दिशा में सोचने लगीं। अत्रे, रांगेणकर, वरेरकर के नाटकों में ऐसी महिलाओं का चित्रण किया गया है। निर्मला मराठी सिनेमा की पहली इंडिपेंडेंट हीरोइन हैं जो अपने गले का मंगलसूत्र तोड़कर साफ शब्दों में अपने पति को उनकी कमजोरी का एहसास कराती हैं। इस काल के नाटकों ने यह प्रश्न उठाया कि जो समाज स्त्री से अनेक अपेक्षाएँ रखता है और उन्हें बलपूर्वक पूरा करता है, वह पुरुष का मूल्यांकन करने का साहस क्यों नहीं करता। अत्रे के सभी नाटकों ने ऐसे प्रश्न उठाए हैं। और आज सत्तर साल बाद भी हम यह दावा नहीं कर सकते कि ये प्रश्न पूरी तरह सुलझ गये हैं। मराठी नाटक में महिलाओं के स्वतंत्रता आंदोलन में अत्रिया के नाटक बहुत महत्वपूर्ण हैं। इस काल में स्त्री-पुरुष संबंधों पर विचार किया जाता था। नाटक पति-पत्नी के रिश्ते में कई सवालिया निशानों के इर्द-गिर्द घूमता रहा। साथ ही विवाह संस्था के दोषों एवं सीमाओं पर भी प्रकाश डाला गया।

अगर एक महिला इस दबाव से उबर सकती है कि दुनिया क्या कहेगी, तो वह अपना जीवन खुद बना सकती है। सदाचार के नाम पर गुलामी और लाचारी के दिन लद गए। अत्रे ने मराठी नाटक में स्त्री रूप को एक अलग आयाम दिया और दिखाया कि एक महिला अपने जीवन को निष्पक्ष रूप से देख सकती है और अवसर पर विद्रोही निर्णय ले सकती है। रांगणेकर ने एक ऐसी महिला का किरदार निभाया है जो अपने व्यक्तित्व और स्वतंत्र अस्तित्व को बरकरार रखती है। द्वितीय विश्व युद्ध के बाद जीवन स्तर और मूल्य बदल गए। महिला पैसे कमाने के लिए बाहर जाती है लेकिन दहलीज लांघकर जब वह घर में आती है तो उसे एक कर्तव्यपरायण गृहिणी, पत्नी, माँ, बहू आदि भूमिका निभाना पड़ता था। महिला ने भी इस चुनौती को स्वीकार कर लिया। महाराष्ट्र में समाज सुधारकों के अथक प्रयास सफल होंगे, ऐसे संकेत मिल रहे हैं। विवाह जैसे दूरगामी परिणाम वाले आयोजनों में आँख मूँद कर और जल्दबाज़ी में निर्णय लिए जाते हैं और इससे गंभीर समस्याएँ पैदा होती हैं। 'तो मी नव्हेच' नाटक में अत्रे ने नारी जीवन के इसी महत्वपूर्ण पहलू पर प्रकाश डाला है। यदि हम इस काल के नाटकों में स्त्री रूपों पर विचार करें तो यह देखा जा सकता है कि स्त्रियाँ अपनी राय व्यक्त करने और उस पर जोर देने लगी हैं। वह अपने साथ हुए अन्याय का विरोध कर रही है। साहसपूर्वक प्रशंसा माँग रही है। उसका मन आधुनिकता की ओर बढ़ रहा है। यह सामान्य तस्वीर है।

विजय तेंदुलकर के 'शांतता कोर्ट चालू आहे' से लेकर जयवंत दलवी की 'बैरिस्टर' तक, अगले युग की कल्पना की गई है। ऐसा लगता है कि इस दौरान अगर महिला आत्मनिर्भर भी हो जाए तो भी समस्या उसका पीछा नहीं छोड़ती। आर्थिक स्वतंत्रता के साथ आर्थिक शोषण आया, स्वतंत्रता के साथ असुरक्षा आई। पुरुषों के साथ उसके निरंतर संपर्क ने कुछ नाटकों के माध्यम से उसकी विनम्रता को खतरे में डाल दिया, और कभी-कभी पारिवारिक ढांचे को परेशान कर दिया।

बेनारे की आबरू को चौक में टांग दिया। हर कोई उसे सजा देने के लिए आगे बढ़ता है। लेकिन प्रो. दामले के बारे में क्या ? उनके लिए कोई सज़ा नहीं है। आज भी हमारे पास ऐसा तठस्थ तंत्र नहीं है जो ऐसे कृत्यों के लिए पुरुषों को जिम्मेदार ठहराए। महिलाओं की आजादी तब तक एक निरर्थक अवधारणा बनी रहेगी जब तक दुनिया भर की महिलाओं के गुणों का पंचनामा निश्छल मन और प्रशिक्षित आंखों से देखने वाला पुरुष वर्ग कानून

की गिरफ्त में नहीं आएगा। स्त्री की बेबसी पर पुरुष शक्ति की जीत ही स्त्री का बलात्कार है ! मर्द की तो ये सनक होती है, लेकिन औरत की जान एक पल में मिट्टी में मिल जाती है। इस काल के नाटकों में इस प्रश्न पर सकारात्मक दृष्टिकोण से विचार किया गया है।

इस काल के नाटकों में महिलाएँ इस बात से अच्छी तरह परिचित हैं कि उनके साथ गलत व्यवहार किया जा रहा है, उन्हें हल्के में लिया जा रहा है। बेनारे ने घोषणा की, "यह मेरा जीवन है। मुझे अपने जीवन का फैसला करने दीजिए।" और उसका असर दूसरे नाटकों पर भी दिखा। एक महिला ने अपने जीवन को एक निश्चित मोड़ और दिशा देने के लिए खुद ही अहम फैसले लिए हैं। इन निर्णयों पर अडिग रही और कड़ा संघर्ष किया। इन सबके बावजूद असफल होने पर असहाय बन कर उसने अपनी जिंदगी खत्म करने का फैसला किया है। इस समय तक महिला घर के बाहर विभिन्न गतिविधियों का आनंद लेना शुरू कर चुकी थी। साथ ही वह घर में अपनी अहम जगह बनाने की कोशिश कर रही थीं। इस काल की स्त्री को घर से गहरा लगाव होता है। उसने मन बना लिया है कि वह किसी भी हालत में घर के ढांचे को मजबूत बनाए रखेगी और परिवार का अर्थ नहीं खोएगी। इसके लिए वह कड़ी मेहनत कर रही हैं।

वर्तमान काल में एकल परिवार प्रथा जोर पकड़ने लगी है। इससे महिलाओं के लिए अपने निर्णय लेना आसान हो गया। चूंकि यह परिवर्तन एक महत्वपूर्ण सामाजिक परिवर्तन था, इसलिए इस पर बहस हुई। फलतः इस काल के अधिकांश नाटक पारिवारिक हैं। ये रूप हमें परिवार व्यवस्था, परिवार में महिलाओं की बदलती भूमिका, परिवार में सौहार्दपूर्ण और अशांत सामंजस्य के बारे में सोचने पर मजबूर करते हैं। आसमान को पाना है; लेकिन घोंसले की गर्मी भी जरूरी है। नाटककारों ने दोनों को प्राप्त करते समय स्त्री की हताशा को नोट किया है। पति-पत्नी के रिश्ते में नई चुनौतियाँ, स्त्री-पुरुष संबंधों की विभिन्न परतें, बदलते संदर्भों को नाटककारों ने प्रभावशाली ढंग से चित्रित किया है। एक महिला जो अपने परिवार से समझौता करने को तैयार नहीं है, वह अपनी गृहिणी, मातृत्व साबित करने के लिए संघर्ष कर रही है। इससे परिवार में तूफ़ान खड़ा हो गया, लेकिन वह मौके पर ही शांत हो गई। परिवार के ढाँचे को ख़त्म नहीं किया गया। अपमानित होने के बावजूद महिला ने परिवार को अस्वीकार नहीं किया है। इस युग की महिलाएँ अपने आत्मसम्मान और आत्मसम्मान को महत्व देकर पारिवारिक व्यवस्था को संरक्षित करते हुए मातृत्व और गृहिणी के सांस्कृतिक मूल्यों की रक्षा करती नजर आती हैं।

अगली अवधि की एक बहुत अलग तस्वीर है। 'पुत्रकामेष्टि' नाटक से लेकर 'वाडा चिरेबंदी' नाटक तक उस काल के कुछ चुनिंदा नाटकों के आधार पर नारी के बदलते स्वरूप पर विचार किया गया है। बाहर के काम के कारण परिवार में महिलाओं की भूमिका बदलने लगी। महिला की उपलब्धि का सभी ने स्वागत किया; लेकिन समाज नहीं चाहता था कि परिवार में उसकी पारंपरिक भूमिका में कोई बदलाव आये। इससे महिला दबाव में रहने लगी। उस पर बोझ बढ़ने लगा। पुरुष के प्रभुत्व के पीछे के चालाकी को समझने लगी। इसलिए उन्होंने पुरुष प्रभुत्व के आगे न झुकने का फैसला किया। उन्होंने समाज से पूछा कि उस परिवार की क्या जरूरत है जिसने हमें गुलाम बनाकर जानवर बना दिया। एक पारिवारिक व्यवस्था जो एक महिला की उपलब्धियों को समायोजित नहीं कर सकती, एक महिला को एक इंसान के रूप में भी नहीं सोचती, उसकी आवश्यकता को चुनौती देती है। क्या परिवार वास्तव में आवश्यक है, क्या परिवार व्यवस्था का कोई विकल्प है, इन सवालों के जवाब तलाशती महिलाएं इस दौर में नाटक का विषय बन गई हैं।

अनिल बर्वे ने 'पुत्रकामेष्टि' नाटक में मानव इनक्यूबेटर के विचार को क्रियान्वित किया है। डेढ़ से दो साल के लिए एक वेश्या को किराये पर लें। वह एक बच्चे को जन्म देगी और भारी भुगतान लेकर बच्चे से दूर चली जाएगी। यह सौदा है। छंदिता वेश्या तय्यार हो जाती है। उद्योगपति बी. के., पत्नी उर्मिला और छंदिता सभी विदेश जाते हैं और अपने बच्चे के साथ वापस आते हैं। बताया जा रहा है कि बच्चा उर्मीला का है। यहां सब ठीक था। लेकिन जब भुगतान के साथ बच्चा देने का समय आता है तो छंदिता का स्नेह आड़े आ जाता है। यह नौ महीने के लिए गर्भाशय को किराए पर लेने, इसका उपयोग करने के बाद भारी कीमत चुकाने और मामला रफादफा करने जितना आसान नहीं है। नौ महीने तक पेट में पालने से होनेवाले भावनात्मक एकता को कौन रोक सकता है ? ममता को कैसे बांधें ? बर्वे ने मानव मस्तिष्क और वैज्ञानिक खोज को जोड़ने का प्रयास किया है। संतान सुख की चाहत रखने वाली उर्मिला और बच्चे को जन्म देने के बावजूद एक भी पैसा लिए बिना घर छोड़ देने वाली छंदिता - इस नाटक में माँ के दो अलग-अलग रूप सामने आते हैं। इस नाटक से समय का भविष्य देखने की क्षमता का पता चला है।

कमला, जिसे जय सिंह ने बाजार से 250 रुपये में खरीदा था, और सरिता, जिसे जय सिंह अपनी पत्नी के लेबल के साथ घर ले आए थे, को तेंदुलकर ने 'कमला' में सशक्त रूप से चित्रित किया है। सरिता का आत्मनिरीक्षण तब शुरू होता है जब उसे एहसास होता है कि एक पुरुष के रूप में उसका पति जयसिंह कितना अलग है। उसे आश्चर्य होता है और गुस्सा भी आता है कि उसने शादी के नाम पर हमें गुलाम बना लिया और इतने लंबे समय तक हमें इस बात का ध्यान कैसे नहीं आया। सरिता इस बात से हैरान है कि उसका पति अपने करियर को आगे बढ़ाने के लिए एक महिला खरीद सकता है। इन दोनों के चित्रण से तेंदुलकर ने कई सवाल उठाए हैं। नारी के ये रूप समाज में नारी के प्रति भय और असमानता के दृष्टिकोण को लेकर अवतरित हुए हैं।

इस काल के कई नाटकों में घर और करियर के बीच उलझी एक महिला की जिंदगी को दर्शाया गया है। कानेटकर ने उड़ान के लिए सिद्ध पंखों और घर में शामिल कदमों के बीच संघर्ष को छेड़ा। इस मामले में महिला का साथ न देकर उसे आरोपियों के पिंजरे में बंद कर इस तरह उसकी परीक्षा लेते रहने से महिला की जिंदगी पर आफत आ रही है। परिवार के ढांचे में लचीलापन होना चाहिए जिससे उसके व्यक्तित्व विकास में बाधा न आए। घर आज भी एक महिला की जरूरत है। वह परिवार को नाराज किए बिना और सभी को साथ लेकर आगे बढ़ना चाहती हैं। अगर इसमें उसे सही सहयोग नहीं मिला तो इस काल के नाटक सब कुछ बर्बाद हो जाने का खतरा बताते हैं।

हमारे समाज में पुरुषों और महिलाओं की नैतिकता अलग-अलग है। महिला ने गलत कदम रखा तो उसे लौटने का मार्ग नहीं रखा। हालाँकि, अनैतिक व्यवहार के कारण पुरुषों को परिवार से बाहर नहीं निकाला जाता है। नैतिकता की इस असमानता को नाटकों में दर्शाया गया है। 'सावित्री' ने सवाल उठाया है कि अगर कोई महिला तमाम बंदिशों को तोड़कर आजादी से जीने का फैसला कर ले तो क्या यह उसके लिए संभव है ? यदि हमें समान नैतिकता चाहिए तो समाज की मानसिकता बदलनी होगी। जो अपराध महिलाओं के लिए अक्षम्य है वह पुरुषों के लिए भी अक्षम्य होना चाहिए।

जयवंत दळवी के 'पुरुष' नाटक में बलात्कार जैसे विस्फोटक विषय को बहुत ही साहसपूर्वक व्यक्त किया गया है। यहाँ बलात्कारी, बलात्कारग्रस्त महिला और कानून की दुखद स्थिति दिखाई देती है। नाटक चेतावनी देता है कि यदि कानून किसी महिला को न्याय देने में विफल रहता है, तो महिला कानून को अपने हाथ में ले सकती है। इस काल के नाटकों में महिला पात्रों में विविधता है। एक ओर एक महिला है जो परिवार व्यवस्था को

काबू में रखती है, तो दूसरी ओर एक महिला है जो अपना जीवन मजबूती से घर में बिताती है। एक महिला में खुद को उन बाधाओं से अलग करने का मानसिक साहस होता है जो उस पर अत्याचार करती हैं। यदि एक महिला परिवार को अस्वीकार करती है, तो कई सांस्कृतिक मूल्य खतरे में पड़ जाएंगे और यह समाज के लिए कितना मानवीय है, यह सवाल इस काल के नाटकों द्वारा उठाया गया है।

समाज ने महिलाओं की पीड़ा से आंखें मूंद लीं। उसने उसकी चीखें अनसुनी कर दीं। न्याय पाने के लिए उसने कोर्ट का दरवाजा खटखटाया। वहां भी उसकी बात को अनसुना किया गया। उसने बदलते समय की जरूरत को समझा। उसने खुद को बदल लिया; लेकिन एक महिला में आए बदलाव को उसके आसपास का समाज और परिवार आसानी से अपने आप में बदलाव लाने या बदलाव को स्वीकार करने के लिए तैयार नहीं होता। जैसे-जैसे एक महिला की आत्म-चेतना जागृत होती है, उसे अपनी पूरी क्षमता का एहसास होता है, और वह बिना किसी कारण सिर्फ इसलिए अपमानित होना स्वीकार नहीं करती क्योंकि वह एक महिला है। पढ़-लिखकर आर्थिक रूप से स्वतंत्र हुआ एक प्रखर व्यक्तित्व अन्याय सहन करने को तैयार नहीं था। बाहरी दुनिया में, एक महिला की उपलब्धियों, उसके साहस, उसकी बुद्धिमत्ता का कम से कम कुछ हद तक सम्मान किया जाता था। एक बुद्धिमान व्यक्ति यह पहचानता है कि एक महिला न केवल उसके बराबर हो सकती है बल्कि उपलब्धि के मामले में उससे आगे भी हो सकती है। वह इस प्रवाह के विपरीत नहीं जा सके। इसके अलावा, परिष्कार, सभ्यता और सहनशीलता का जो मुखौटा उसने पहन रखा था, वह उसे इस प्रगति को स्वीकार करने के लिए मजबूर कर रहा था। लेकिन परिवार में उनका एकाधिकार था। दहलीज लांघकर घर में प्रवेश करते ही वही पुराना पालन-पोषण, वही पुरानी सेवा ! जैसे-जैसे महिला बड़ी होने लगी, उस पर जिम्मेदारियां बढ़ती गईं। घर के अंदर और बाहर दोनों जगह उन पर बोझ डाला गया। उसने ये भी सहा। सफलतापूर्वक हासिल किया।

लेकिन इतना सब कुछ करने के बावजूद भी हमारे परिवार वाले हमें इंसान के तौर पर देखने से चूक रहे हैं, किसी को हमें समझने की जरूरत महसूस नहीं होती। उन्होंने उस व्यवस्था के सामने आत्मसमर्पण करने से इनकार कर दिया, जहां हम अपनी जान जोखिम में डालकर अपने ही लोगों का विश्वास हासिल करने में विफल रहे हैं, हमारी गलतियों के लिए कोई माफी नहीं है, किसी कारण से रास्ता भटकी औरत को वापस आने का मार्ग नहीं है, संदेह का दानव किसी भी समय हमारे जीवन को नष्ट कर सकता है। वह जीवन के उस तरीके को अस्वीकार करने का निर्णय लेती है जिस के साथ वह खुश नहीं है और जिसके बिना वह खुश नहीं है। मराठी नाटकों में नारी के ऐसे रूप प्रस्तुत किये गये हैं जो हमें निम्नलिखित कालखंडों में नारी के अस्तित्व के बारे में सोचने पर मजबूर कर देते हैं। जब मातृत्व, जिसकी महिमा सर्वव्यापी है, की उपेक्षा की जाती है, जब माँ के रूप में केवल श्रम ही रह जाता है, जब गृहिणी के रूप में केवल सतर्कता की अपेक्षा की जाती है, तब इस मातृत्व का भी त्याग करने के लिए भी वह तैयार हुई। वह जुए को फेंक देने के लिए मानसिक रूप से तैयार थी। एक शादी जो एक महिला को दुनिया के बंधन में बांध देती है, जो खुशी से अधिक बोझ लाती है, जहां मेलजोल से अधिक लेनदेन महत्वपूर्ण हो जाता है, उसे एक महिला द्वारा अस्वीकार किया जा सकता है। वह अविवाहित रह सकती है। विवाह के बिना भी माँ बन सकती हैं। आर्थिक रूप से स्वतंत्र होने के कारण वह अपने निर्णय स्वयं लेती है। उसे किसी के दरवाजे पर रहम की भीख मांगने की जरूरत नहीं है। नाटककार ने ऐसे भी वास्तविक पारिवारिक जीवन को आकार दिया।

इससे आगे बढ़कर नाटककारों ने पारंपरिक पारिवारिक संरचना में बदलाव की संभावना व्यक्त की है। जिसमें नैतिक संकेत अप्रभावी होने वाले हैं। नैतिकता की नई अवधारणाएँ आम होती जा रही हैं। और ये सभी परिवर्तन इतनी तेजी और तीव्रता से हो रहे हैं कि समाज के पास इन्हें स्वीकार करने के अलावा कोई विकल्प नहीं है। मातृत्व के प्रति एक महिला का लगाव समझ से बाहर होता है। माँ बनना ही उसके जीवन का अर्थ है उस घिसी-पिटी अवधारणा को तोड़ते हुए एलकुंचवारने 'आत्मकथा' नाटक में दिखाया है कि राजाधक्ष की पिता बनने की इच्छा कितनी अनिवार्य है कि। चूँकि मातृत्व ही स्त्री का गौरव है, पितृसत्तात्मक समाज में जिस पुरुष का नाम संतान आगे बढ़ाएगी, उसे संतान से कोई मोह नहीं होगा ? शायद यही कारण है कि राजाध्यक्ष वास्तव में जो सपना पूरा नहीं हो सका उस सपने को एक आत्मकथात्मक उपन्यास में पूरा करना चाहते थे।

कुल मिलाकर देखा जाए तो पुरुष और महिला के बीच बेहद नाजुक और जटिल रिश्ता पति-पत्नी का होता है। यह कब किस कारण से फेल हो जाए, यह कहना संभव नहीं है। ऊपर से खुशहाल दिखने वाली पारिवारिक दुनिया जरूरी नहीं कि अंदर से खुश हो। इस रिश्ते को निभाने और खुशहाल बनाने के लिए कोई नियम नहीं हैं। बाहरी दुनिया में काम करनेवाली (एका घरात होती) पत्नी को पति लगातार संदेह की नजर से देखता है और पत्नी को लगातार चिंता रहती है कि उसका पति उससे (चारचौघी) ऊब जाएगा। ऐसे लगता है कि शादी को बनाए रखना सिर्फ उसकी एकमात्र ज़िम्मेदारी है। पति किसी भी समय बिना कोई स्पष्टीकरण दिए घर छोड़ सकता है (सावित्री), एक महिला के साथ दस साल तक रह सकता है और फिर से उसी घर में लौट सकता है (सावित्री), शादी के नाम पर पत्नी की केवल गुलाम बन जाना (कमला) इस बात की बेचैन करने वाली भावना पति तक नहीं पहुंच पाती। घर की परेशानियों से तंग आकर, जब घर पर रहना असंभव हो जाएगा तो अगर वह घर छोड़ना शुरू कर देगी तो दुनिया क्या कहेगी इस बात का पति डर दिखा सकता है। जबकि घर में हर कोई उन पर बेबुनियाद आरोप लगा रहा है, वह (घराबाहेर) शांत बैठ सकते हैं क्योंकि मैं कुछ नहीं कर सकती। इतना ही नहीं, जब वह सुनता है कि उसका अपना पिता उसकी पत्नी के साथ अनैतिक संबंध बनाना चाहता है तो भी उसका खून नहीं खौलता। अपने सिर को ठंडक देने के लिए वह समुद्र पर बैठ सकता है (कर्ता करविता) । अपने अनैतिक संबंध को छुपाने के लिए, पति अपनी पत्नी को नशे की लत (कर्ता करविता) लगाकर उसको हमेशा के लिए गायब कर सकता है। जबकि उसे घर से बाहर निकलने, कुछ करने के लिए प्रोत्साहित कर सकता है, वह उसे यह बताकर अपने अधिकार का प्रयोग कर सकता है कि उसे क्या करना है (पंखाना ओढ़ पावलांची)। परिवार के फ्रेम में ऐसी कई तरह की तस्वीरें होती हैं। सवाल है कि क्या वे परिवार संगठन में सेंध नहीं लगा रहे हैं। यह जानना अत्यावश्यक हो गया है कि महिलाओं के बदलते स्वरूप को पारिवारिक व्यवस्था के साथ सामंजस्य बिठाना एक सांस्कृतिक एवं सामाजिक आवश्यकता है। पति-पत्नी रिश्ते संबंध में वि.वा.शिरवाडकर के नाटक 'नटसम्राट' का एक संदर्भ यहां उद्धृत करने लायक है। इस नाटक में, नट सम्राट अप्पा बेलवलकर अपनी पत्नी कावेरी से कहते हैं, "पत्नी एक बंदरगाह है, कावेरी, एक जहाज के लिए जिसे पति कहा जाता है।" पत्नी को पति का विश्राम स्थल माना जाता है। वह आगे कहते हैं, "जहाज अपनी पाल उठाता है और सात समुद्रों में जाने के लिए निकल पड़ता है। ये व्यापार, कला, लक्ष्य, प्यार और नफरत के समुद्र हैं। इन समुद्रों में प्रवेश करने के लिए, दूर के तटों को देखने के लिए, तूफान और हवा से लड़ने के लिए, चांदनी के साथ खेलने के लिए। क्रोधित लहरों का आनंद लेने के लिए। जीने के लिए कदम दर कदम मौत का सामना करना पड़ता है। लेकिन इन सभी विस्फोटों को झेलते हुए, जहाज लगातार बंदरगाह को देख रहा है। यह हरी, नीली रोशनी के साथ बंदरगाह पर वापस आता है। बंदरगाह में ही हार होती है।" पति के जीवन में पत्नी की भूमिका उसके पूरे जीवन को रोशन कर देने वाली, उसके पराजयों को छिपानेवाली, उसके जीत के

झंडे फहराने वाली और सबसे बढ़कर लगातार उसकी राह देखानेवाली, उसके स्वागत को हमेशा सिद्ध रहनेवाली होती है। यह रिश्ता एक-दूसरे को समझने में सफल होता है। अब समय के साथ उपलब्धि की अवधारणा, सीमाएँ और संरचना बदल गई है। अगर पत्नी मुशाफिरी के लिए अपना जहाज समुंदर पर ले जाती है, अगर वह घायल हो जाती है, तो उसे उसके लौटने का इंतजार करना, सांत्वना देना, सहना, हार के दर्द को कम करना, पति नाम का बंदरगाह उसकी मनोवैज्ञानिक ज़रूरत है और पति की ज़िम्मेदारी भी। एक बार जब एक महिला यह विश्वास करना शुरू कर देती है कि उसे स्वीकार किया जाता है और उसके गलत काम के लिए माफ कर दिया जाता है, तो उसकी विफलता के साथ-साथ कई विपत्तियां भी टल जाती हैं। यह एक मजबूत, सक्षम रिश्ते की शुरुआत होगी।

निष्कर्ष:

नारी जीवन का बहुआयामी दृष्टिकोण मराठी नाटकों से लिया गया है। नाटककारों ने नारी के जीवन के विभिन्न पड़ावों, विभिन्न मोड़ों पर उसके रूप-रंग का चित्रण किया है। नाटककारों ने वास्तविक स्त्री रूपों के साथ-साथ भावी स्त्री रूपों की संभावना भी दर्ज की है। नाटककारों ने नारी की समस्याओं से जूझने की शक्ति, निर्णय लेने की क्षमता, दर्द को पचाने की शक्ति तथा सुख देने की चाहत का अत्यंत मनमोहक, मार्मिक एवं विश्वसनीय चित्रण मराठी नाटकों के माध्यम से किया है। नाटककार का सूक्ष्म अवलोकन एवं बोधगम्य अद्भुत है, अभिव्यक्ति की गुफा उत्कृष्ट है। इसीलिए मराठी नाटक को विकासशील, प्रगतिशील, साहसी और दूरदर्शी जैसे उपयुक्त विशेषण दिए गए हैं।